P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-I* ISSUE-IX* December- 2016
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

जौनसार –बावर की लोक संस्कृति के विकास में मेलों का योगदानःविशू मेले के विशेष सन्दर्भ में

टीका राम
शोधकर्ता,
इतिहास विभाग,
एच0 एन0 बी0 गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, गढ़वाल

सारांश

विशू मेला जौनसार–बावर, हिमाचल–प्रदेश, रँवाई–जौनपुर क्षेत्र का एक लोक पर्व अथवा त्यौहार है। जौनसार–बावर देहरादून जिले का एक पहाड़ी परगना है। यह उत्तर में उत्तरकाशी, दक्षिण में देहरादून, पूर्व में टिहरी तथा पश्चिम में हिमाचल–प्रदेश के साथ भौगोलिक सीमा बनाता है। यह क्षेत्र यमुना–टौंस के मध्य क्षेत्र में विस्तृत है। यह क्षेत्र अपनी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण हेतु अग्रणी रहा है। यहां प्रत्येक माह की संक्रान्ति का धार्मिक कार्यों की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व है। परन्तु कुछ प्रमुख संक्रान्ति के अवसर पर विशू, दशहरा एवं दीवाली आदि त्यौहार मनाये जाने की परम्परा है। विशू मेला बैशाख संक्रान्ति के अवसर पर ही मनाया जाता है। यह मेला नई फसल कटाई–दवाई, धान्य संग्रह, अपने इष्ट–देवता की पूजा–अर्चना आदि के कारणों से मनाया जाता है। यह मेला लोक संस्कृति के विस्तार का एक सशक्त माध्यम है। विशू मेला वैशाखी के अवसर पर सम्पूर्ण देश के साथ हिमालयी क्षेत्रों जौनसार–बावर, रँवाई–जौनपुर एवं हिमाचल–प्रदेश आदि क्षेत्रों में मनाया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से इस उत्सव के अधिकांश स्थलों पर विशू मेले की लोकप्रियता, सार्थकता एवं प्रासंगिकता में कमी आने और पूर्वगामी तथा परिवर्तित स्वरूप को भ्रमण, साक्षात्कार एवं पूर्ववर्ती कार्यों के माध्यम से शोध का मुख्य आधार बनाया गया है।

मुख्य शब्दः लोक संस्कृति, सांस्कृतिक कार्यक्रम, धुम्मसू नृत्य, ठोउड़ा, झैंता, रासो, नाट्य – कला, घुण्ड़िया रासो, मेले का आर्थिक विश्लेषण, स्वरूप, परिवर्तन के तत्व,

प्रस्तावना

जौनसार–बावर व समीपवर्ती क्षेत्र हिमाचल प्रदेश, रँवाई–जौनपुर में गुजर–बसर करने वाले समाज में मेले व त्यौहारों की लोक संस्कृति के विकास में प्राचीन समय से महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस क्षेत्र की सामाजिकता व सामुदायिकता की भावना को प्रकट करने का सर्वाधिक सशक्त, पारदर्शी, व उपयुक्त साधन और माध्यम यहां के मेले व त्यौहार है। इस क्षेत्र में मनाये जाने वाले त्यौहारों व क्षेत्र के विभिन्न स्थानों पर आयोजित होने वाले मेलों के माध्यम से यहां की लोक संस्कृति का प्रथम दृष्टया परिचय व चित्र परिलक्षित होता है। लोक संस्कृति का परिचय जितनी अच्छी तरह मेलों व त्यौहारों के माध्यम से हो सकता है उतना अच्छा परिचय किसी दूसरे सांस्कृतिक घटक से नहीं हो सकता है।

विशू मेला विषुवत संक्रान्ति के नाम और इस अवसर पर प्रतिवर्ष सम्पूर्ण समाज में नववर्ष, धान्य–संग्रह, एवं कृषि–पशुपालन आदि की समृद्धि के उद्देश्य से मनाया जाता है। इसी कारण वश अपने इष्ट देवता और वन देवी–देवता अर्थात् प्रकृति पूजा की परम्परा समाज में प्रचलित है। सांस्कृतिक इतिहास के क्षेत्र विशेष में विशू मेले का अध्ययन करना महत्वपूर्ण व अनिवार्य है। इस क्षेत्र में विशू मेले को त्यौहार के रूप में आरम्भ किया जाता है जो धीरे–धीरे मेले में परिवर्तित हो जाता है। इसकी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रकृति मेले व त्यौहार पर आधारित है। जबकि मेले का स्वरूप गांव–खेत की भागीदारी तथा भौगोलिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक समानता पर आधारित है। यह मेला यहां के लोगों की जीवन शैली व लोक संस्कृति का आवश्यक अंग है। प्रत्येक मानव समाज व उनके क्षेत्रों में आयोजित विभिन्न प्रकार के मेलों व त्यौहारों की प्रकृति, स्वरूप, क्रिया–कलाप व मनाने के तौर–तरीके में प्राकृतिक व क्षेत्रवासियों के प्रारम्भ से अब तक संचित ज्ञान के अन्तर्सम्बन्धों का परिणाम है।

विशू मेले में प्राचीन समय से ठोउड़ा नाट्य–कला, लोकनृत्य, लोकगीत आदि सांस्कृतिक कार्यक्रमों की परम्परा समाज में प्रचलित है। मेले का समापन

घूण्ड़िया रासो तान्दी नृत्य से होता है। तत्पश्चात् समस्त लोग अपने–अपने घरों की ओर लौट जाते हैं। आधुनिकता के प्रभाव व पाश्चात्य संस्कृति के प्रवेश के कारण इस मेले में निरन्तर परम्परागत सांस्कृतिक कार्यक्रम अपना अस्तित्व व महत्व खोते जा रहे हैं। इसलिए नब्बे के दशक से मेले की प्रासंगिकता, सार्थकता व लोकप्रियता में कमी आ रही है।

विशू मेले का उद्देश्य

आधुनिकता से पूर्व तक यमुना–टौंस घाटी के मध्य क्षेत्र जैनसार–बावर तथा विश्व व देश के सभी क्षेत्रों में संचार व यातायात की मूलभूत सुविधायें उपलब्ध नहीं थीं। उस समय यहां के ग्रामीण व क्षेत्रीय लोग अपने नाते–रिशतेदारों व सगे–सम्बन्धियों से नहीं मिल पाते थे और न ही एक–दूसरे की कुशलताओं व सुख–दुःख का आदान–प्रदान कर पाते थे। यही कारण था कि लोग अपने घनिष्ट मित्रों व सगे–सम्बन्धियों की कुशलताओं से अनभिज्ञ रहते थे। इसी कारणवश इनकी स्वाभाविक समस्यायें व परेशानियां बढ़ जाती थी। इन समस्याओं के समाधान व परस्पर मिलन के उद्देश्य से प्रेरित होकर यहां वर्ष में ऋतुओं के आगमन तथा धान्य संग्रह के अवसर पर त्यौहार व मेलों का आयोजन होने लगा तथा ये मेले मनोरंजन के साथ–साथ सामाजिक व पारिवारिक मिलन के केन्द्रों के रूप प्रचलित हुए। विशू मेला इसका प्रमुख केन्द्र है। यह लोगों के परस्पर मिलन तथा लोक संस्कृति के विकास व विस्तार का सशक्त माध्यम है। यही कारण है कि लोग इन मेलों में शामिल होकर एक–दूसरे से सम्पर्क बनाये रखते हैं तथा अपनी कुशलताओं का आदान–प्रदान करने लगे। इस प्रकार विशू मेला यहां की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक मिलन के केन्द्र व संचार माध्यम के साधन बन गये। इसीलिए विशू मेला व अन्य मेलों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे।

शोध क्षेत्र का परिचय

जौनसार–बाबर भौगोलिक और ऐतिहासिक रूप से देहरादून जिले का एक परगना है। इसके उत्तर में उत्तरकाशी एवं दक्षिण में देहरादून तथा पूर्व में टिहरी एवं पश्चिम में हिमाचल प्रदेश स्थित है। सिरमौर से इसे टौंस नदी पृथक करती है। इसका निचला हिस्सा टौंस और यमुना का दोआब है। इस क्षेत्र का नाम जौनसार–बावर दो पट्टियों के रूप में प्रसिद्ध है। हालांकि इसका तीसरा सब डिवीजन लोखण्ड़ी–किनाणी क्षेत्र है। जौनसार के उत्तर में लोखण्ड़ी, पूर्व में यमुना और पश्चिम में टौंस नदी तथा दक्षिण में कालसी है। लोखण्ड़ी से कुछ दूर बैनालखड़ जौनसार–बाबर की सीमा बनाता है। बैनालखड़ के उस पार का क्षेत्र बावर और बावर के पश्चिम में देवघार खत है। देवघार खत भी जौनसार–बावर का ही भाग है।[1]

इस क्षेत्र का नाम जौनसार–बावर क्यों पड़ा? इसके विषय में इतिहासकारों व लेखकों के मध्य अलग–अलग धारणायें हैं। परन्तु तथ्य पूर्ण धारणा यह है कि गढ़वाल से जमना (यमुना नदी) पार होने के कारण यह क्षेत्र 'जमनापार' कहलाने लगा जो कालान्तर में जौनसार के रूप में प्रचलित हुआ। सुदूर उत्तर में 'पॉवर नदी' के कारण यह क्षेत्र बावर कहलाया।[2] परन्तु कल्हण कृत राजतरंगिणी में 'बावापुर' नामक स्थान का उल्लेख मिलता है, जो जम्मू से 40 मील पूर्व में 'बवोर' नाम से जाना जाता है। इस बावापुर अथवा बवोर से तात्पर्य बावर से लगाया जाता है।[3] इस प्रकार इस सम्पूर्ण क्षेत्र का आधुनिक नाम "जौनसार–बावर" पड़ गया।[4] हालांकि इसमें देवघार क्षेत्र के नाम का जिक्र नहीं होता है। देवघार क्षेत्र को मिलाकर इसका नवीन ऐतिहासिक व भौगोलिक नाम 'जौनसार–बावर–देवघार' होना चाहिए।

जौनसार–बावर तथा देवघार क्षेत्र मूलतः खस प्रधान समाज है। इस क्षेत्र में खस राजपूतों का प्रभुत्व है। इसका कश्मीर, हिमाचल प्रदेश से गहरा सम्बन्ध है। आज भी एक दूसरे से परिचय में सर्वप्रथम यह पूछा जाता है कि, तुम कहां के खसिया अर्थात् खस हो। साथ ही इस क्षेत्र के सर्वोच्च पूज्य और लोकप्रिय देवता 'चार महासू' का कुड्डू और काश्मीर (कश्मीर) मूल स्थान है। "कूड्डू–काश्मीर में अनोडी (हनोल) का बोठा और चालदा" अर्थात् कुल्लू और काश्मीर से आये हुए अनौल (हनोल) के चालदा (चलता महासू) और बोठा'(बैठा हुआ महासू) प्रमुख देवता है। इस प्रकार आज भी इस क्षेत्र में खस जाति के स्मारक सम्बन्धी नामों में खशकातर तथा हिमाचल में खशधार, खशकोड़ी आदि स्थान नाम उल्लेखनीय है।[5]

खसों के मूल स्थान तथा भारत में प्रवेश के सम्बन्ध में पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के मध्य मतभेद है। कुछ विद्वान इन्हें मध्य एशिया मूल के मानते हैं तो कुछ भारतीय मूल के मानते हैं। खस मूलतः मध्य एशिया के काकेशस पर्वत से ईरान, अफगानिस्तान के रास्ते से हिन्दूकुश को पार कर भारत आये[6] और काशगर, कशकारा, हिन्दूकुश आदि स्थानों पर अपनी छाप छोड़कर कश्मीर से नेपाल तक आ पहुँचे। आज भी हिमाचल प्रदेश और जौनसार–बावर में खस नाम से इसके प्रमाण मौजूद है।[7] विद्वानों का मत है कि खस 1500–1000 ईसा पूर्व के मध्य पश्चिमोत्तर क्षेत्रों से आये हैं। राहुल सांकृत्यायन खसों के आगमन का समय 2000 ई0 पू0 बताते हैं।[8]

इस प्रकार उपर्युक्त मतों और तथ्यों से स्पष्ट होता है कि खस मूलतः मध्य एशिया के मूल निवासी थे। खस आर्यों की एक शाखा थी जो भारत में आगमन के समय अपनी वैदिक बान्धवों की शाखा से पृथक होने पर हिमालय पर्वतीय क्षेत्रों में विचरण करते हुये यहां के मूल निवासी हो गये तथा एक शाखा इनकी उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में आकर बस गयी। कालान्तर में आर्यों और खसों के मध्य सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक अन्तर दिखाई देते हैं। परन्तु रूप–आकृति में काफी समानता दिखाई देती है।

जौनसार–बावर की संस्कृति को समृद्ध बनाने में मेलों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस संस्कृति को यदि मेला संस्कृति कहा गया तो अत्युक्ति न होगी। यहां की मेला संस्कृति की परम्परा हिन्दू मेला संस्कृति के समान है। यहां भी मेले, पर्व, एवं त्यौहार ऋतु परिवर्तन के अवसर पर धान्य संग्रह और प्रकृति पूजा एवं धार्मिक रूप से प्रेरित है। परन्तु जौनसार–बावर में वैशाख संक्रान्ति, दशहरा, दीवाली एवं पौश माह की संक्रान्ति को चार साजों (चौंऊंसाजै) अर्थात् त्यौहार के रूप में मनाया जाता है। इन साजों का समाज में अपना सामाजिक, धार्मिक,

सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व है। इन त्यौहारों की संक्रान्ति को स्थानीय भाषा–बोली, रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं के अनुसार 'चार साजे'(चौऊँसाजै) कहा जाता है। इस परम्परा के अनुसार वैशाख संक्रान्ति का 'साजा' एक है। इस अवसर पर लोग अपने–अपने इष्ट देवता व देवी की पूजा अर्चना के साथ प्रकृति पूजा भी करते हैं। मेला संस्कृति को समझने से पहले सम्पूर्ण समाज की लोक संस्कृति का अध्ययन करना आवश्यक है। मेला संस्कृति तो लोक संस्कृति का एक भाग है। परन्तु लोक संस्कृति समाज की प्रेरणादायिनी और प्राण वायु है। अतः इस क्षेत्र में आयोजित मेले मुख्यतः त्यौहारों पर आधारित है तथा इनकी प्रकृति त्यौहारों एवं मेलों पर आधारित है।

लोक संस्कृति का अर्थ

लोक समाज अथवा जन समुदाय की संस्कृति ही सामान्य अर्थों मे लोक संस्कृति है। यह समस्त मानव संस्कृति का एक महत्वपूर्ण एवं विशेष अंग है। लोक शब्द की उत्पति 'संस्कृत' के 'लोकृ' धातु में 'ध', प्रत्यय के योग से हुई। अर्थात् जिसका अर्थ 'देखने वाला' से है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में लोक के अर्थ 'जीवन' और 'स्थान' बताया गया है तथा पाणिनि व अन्य विद्वान ने 'लोक शब्द' का अर्थ जन सामान्य के लिए प्रयुक्त किया है। शाब्दिक दृष्टि से भी लोक शब्द का 'जन समुदाय' के लिए प्रयोग किया जाता है। 'संस्कृति' शब्द से अभिप्राय सीखा हुआ व्यावहार से है। इसके अन्तर्गत मानव जीवन की व्यावहारिक घटनायें या उनके संस्कारों का अध्ययन किया जाता है। अतः संस्कृति का उद्भव व विकास संस्कार शब्द से हुआ है।

लोक संस्कृति को ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत एक व्यवस्थित अवधारणा के रूप में प्रतिपादित करने का श्रेय राबर्ट रेडफिल्ड को है। इन्होंने लोक संस्कृति के लिए 'कृषक संस्कृति' शब्द को प्रयुक्त किया था। यह समाज आकार में छोटा होता है तथा इसके अन्तर्गत व्यवस्थित शिक्षा का अभाव, सदस्यों के व्यवहारों में समरूपता, रूढ़िवादिता तथा सामूहिक दृढ़ता की विशेषता पायी जाती है। लोक समाज में व्यक्तियों के व्यवहार कानून से उतने प्रभावित नहीं होते जितने कि परम्पराओं तथा धार्मिक नियमों से प्रभावित होते हैं।

जॉर्ज एम0 फास्टर के अनुसार ''लोक संस्कृति को जीवन की एक ऐसी सामान्य विधि के रूप में समझा जा सकता है जो एक क्षेत्र विशेष के बहुत से गांवों, कस्बों तथा नगरों के कुछ या सभी व्यक्तियों की विशेषता के रूप में स्पष्ट होती है तथा लोक समाज उन व्यक्तियों का एक संगठित समूह है जो एक लोक संस्कृति से बंधा होता है।[9]

जौनसार–बावर की लोक संस्कृति के विकास में तीज–त्यौहार की भूमिका

मेला लोक संस्कृति के अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। मेलों के माध्यम से लोक संस्कृति का विकास एवं विस्तार होता है। किसी जन समुदाय अथवा क्षेत्र की लोक संस्कृति में परम्परागत रूप से मनाये जाने वाले तीज व त्यौहारों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। ये तीज व त्यौहार भारतीय संस्कृति की प्रमुख देन है। इस अतीत गौरव की शंखध्वनि का समय–समय पर हमारे सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन में संचार होता रहता है। 'मेला' शब्द की उत्पत्ति 'मेल' शब्द से हुई है। जिसका अभिप्राय मिलन से है अर्थात् किसी नियत तिथि को नियत स्थान पर होने वाले जनसमूह का मिलन, समागम, व जमावड़ा ही मेला है। मनोरंजन, आमोद–प्रमोद तथा हंसी–खुशी से युक्त इस मिलन का सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक महत्व भी होता है। यमुना–टौंस घाटी के मध्य विस्तृत यह क्षेत्र आदिकाल से ही भौगोलिक, ऐतिहासिक, पौराणिक मान्यताओं एवं धार्मिक परम्पराओं के कारण एक विलग क्षेत्र रहा है। इसकी अपनी भौगोलिक, सांस्कृतिक अस्मिता तथा सामाजिक पहचान है। यहां की संस्कृति बहुत ही भिन्न व विशिष्ट है। इसी लोक–संस्कृति में जौनसार–बावर व यमुना–टौंस घाटी के इर्द–गिर्द क्षेत्र की सुन्दरता व मधुरता निहित है। यहां की लोक संस्कृति प्राचीन और प्रदेश के अन्य क्षेत्रों से अलग है। यहां की लोक संस्कृति की स्पष्ट झलक क्षेत्र में मनाये जाने वाले मेले व त्यौहारों में परिलक्षित होती है। क्षेत्र की लोक संस्कृति के अन्तर्गत यहां जन समुदाय के धार्मिक विधि–विधान, व्यवहार, संस्कार व अनुष्ठान, कला–साहत्यि, ज्ञान–विज्ञान, लोकनृत्य, लोकगीत, व लोककथा, नाटक, लोकोक्ति व मुहावरे आदि ही यहां की लोक संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग है।

प्रस्तुत शोध पत्र में यमुना–टौंस घाटी के मध्य में विस्तृत जौनसार–बावर की लोक संस्कृति के तथ्यों का अध्ययन किया गया है। ग्रामीण समुदाय में प्रचलित लोक संस्कृति की अवधारणा महत्वपूर्ण होती है। लोक संस्कृति ही किसी समाज अथवा जन समुदाय और ग्रामीण जन जीवन की आत्मा और उसका सामाजिक पर्यावरण व वातावरण है। मानव समाज आदि काल से अलग–अलग श्रेणियों में विभाजित होने लगा तथा इस काल से मानव समाज दो समूहों में विभाजित रहा। पहला समाज जिसमें साधारण व सरल जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों का रहन–सहन व जीवन–यापन होता है और दूसरा वह समाज जिसमें व्यक्तियों को तुलनात्मक दृष्टि से उन्नत सामाजिक पर्यावरण व वातावरण के साथ ही शिक्षा–दीक्षा प्राप्त होती रहती थी। इनमें पहले समाज को लोक समाज तथा दूसरे समाज की प्रकृति पहले से भिन्न होने के कारण इसे लोक समाज नहीं कहा जा सकता है। इन दोनों समाजों में आचार–विचार, खान–पान, रहन–सहन, ज्ञान–विज्ञान, एवं रूचियों में स्पष्ट भिन्नता परिलक्षित होती है।

यमुना–टौंस के मध्य क्षेत्र में विस्तृत जौनसार–बावर की लोक संस्कृति की समानता अधिकांशतः आस–पड़ोस के क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के महासू, सिरमौर, जूब्बल व उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी जिले के रँवाई–जौनपुर से काफी मिलती जुलती है। प्रस्तुत शोध–पत्र में केवल यमुना–टौंस घाटी के मध्य क्षेत्र जौनसार–बावर को चयनित किया गया। यह सम्पूर्ण क्षेत्र गढ़वाल हिमालय के शेष क्षेत्रों से बिलकुल अलग सामाजिक, रीति–रिवाजों, रहन–सहन, भाषा–बोली वाला पृथक सांस्कृतिक क्षेत्र है, जिसमें जौनसार–बावर, रँवाई–जौनपुर एवं हिमाचल–प्रदेश की संस्कृतियों में आमूल–चूल क्षेत्रीय विभिन्नताओं के

साथ–साथ अधिकांशतः एक समान सांस्कृतिक समानतायें दृष्टिगोचर होती है।[10]

विशू मेले की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

'विश' मेला जौनसार–बावर, हिमाचल–प्रदेश एवं रँवाई–जौनपुर का एक लोक पर्व अथवा लोक त्यौहार है। इस क्षेत्र में मनाये जाने वाले बसन्त उत्सव को विशू पर्व अथवा विशू का त्यौहार कहा जाता है। गढ़वाल हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में इसे विखोती या वैशाखी कहते हैं। विशू मेला यहां के लोगों की रागात्मक एवं सौन्दर्यबोध भावनाओं की उच्चतम अभिव्यक्ति है। विशू पर्व वैशाख की विषुवत संक्रान्ति से शुरू होता है। विशुवत संक्रान्ति के नाम से इस पर्व का नाम विशू पड़ा। संक्रान्ति के दिन सर्वप्रथम अपने इष्ट देवता की पूजा की जाती है।[11] विशू का आरम्भ त्यौहार के रूप में होता है, जो धीरे–धीरे मेले का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इससे स्पष्ट होता है कि विशू मेला त्यौहार पर आधारित मेला है अर्थात् इसकी प्रकृति त्यौहार और मेले दोनों पर आधारित है। स्थानीय परम्परानुसार वैशाख संक्रान्ति को विशू का 'साजा' कहा जाता है। विशू के इस साजे को त्यौहार कहते हैं। इस क्रम में सर्वप्रथम बुरासनी पर्व अथवा फूल संक्रान्ति आयोजित होती है। तत्पश्चात् अगले दिन विशू मेला आरम्भ होता है। इस मेले को त्यौहार आधारित मेला कहना अधिक प्रासंगिक होगा।[12]

जब सूर्य विषुवत रेखा[13] के निकट होता है, तो उस समय जौनसार–बावर में चैत्र मास के अन्तिम दिन विषुवत संक्राति के शुभ अवसर पर बुरासनी (फूल संक्रान्ति) पर्व को परम्परागत ढंग से मनाया जाता है। बुरासनी (फूल संक्रान्ति) पर्व को जौनसार–बावर के लखवाड़ और जौनपुर क्षेत्र में एक माह पूर्व से गांव के बालक–बालिकायें देव आंगन में फूल पूजने आरम्भ करते हैं। घर के चूल्हा चौकी पर फूल सजाते हैं। तथा बड़ों को फूल देकर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। "बसन्त श्री के कानन–वन–कुन्जों" से भांति–भांति के सुन्दर पुष्प लाकर बच्चे प्रभाती गाते हैं। यह कुमाऊँ–गढ़वाल में फूलदेई पर्व (पुष्पदेहरी) के समान प्रतीत होती है।[14]

जौनसार–बावर के शेष क्षेत्र में वैशाख सक्रान्ति को बुरासनी पर्व के नाम से मनाया जाता है। यह पर्व वैशाख संक्रान्ति और उससे पहले दिन 'विशुड़ी' के नाम से मनाया जाता है। स्थानीय भाषा–बोली में इसे बुरासनी या 'फूलयात' कहते हैं। इसी दिन से सम्पूर्ण क्षेत्र में विशू मेले का आरम्भ हो जाता है। इसमें मुख्यतः गांव के युवा और बच्चे शामिल होते हैं। प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में गांव के युवक जंगल से बुरांस के फूलों की मालायें और गुलदस्ते बनाकर लाते हैं। तत्पश्चात् एक जगह एकत्र होकर वाद्य–यन्त्रों के साथ–साथ गांव में नृत्य करते हुये प्रवेश करते हैं। गांव में पहुँचते ही युवक बाजगी लोगों को फूल देकर अपने घरों को निकल जाते हैं। तत्पश्चात् अपने घरों और मन्दिरों के अग्र भाग पर बुरांस की मालायें और गुलदस्ते सजाते हैं। इस प्रकार वैशाखी के दिन इस रंग–बिरंगे फूलों से सुसज्जित पर्व का समापन होता है। उसके अगले दिन विशू मेला आरम्भ होता है।[15]

विशू मेले का शुभारम्भ वैशाख संक्रान्ति अर्थात् वैशाख शुक्ल तृतीया अथवा अक्षय तृतीया[16] के शुभ अवसर पर होता है। इसकी नियत तिथि 13 अप्रैल से 16 अप्रैल तक है।[17] वैशाखी के अवसर पर सम्पूर्ण देश में अलग–अलग नामों से वैशाखी पर्व को मनाया जाता है। हिमाचल प्रदेश, जौनसार–बावर तथा उत्तरकाशी में विशू तथा रँवाई क्षेत्र में फूलयारी, आसाम में बिहू तथा चम्बा में फूल्यांच के नाम से मनाया जाता है। इस प्रकार हिमालय क्षेत्र में पश्चिम में डूग्गर से पूर्व में आसाम तक नियत तिथि एवं पारम्परिक रूप से मनाते हैं।[18] जौनसार–बावर, हिमाचल प्रदेश तथा जौनपुर–रँवाई क्षेत्र में प्रथम वैशाख से प्रथम ज्येष्ठ तक जगह–जगह विशू मेले आयोजित होते हैं।[19]

जौनसार–बाबर में वैशााख आगमन पर नयी फसल की कटाई–दवाई कर धान्य संग्रह के उपलक्ष्य में जगह–जगह विशू मेले आयोजित होते हैं।[20] धान्य संग्रह के साथ प्रकृति पूजा भी की जाती है। उल्लेख है कि इस अवसर पर उत्पादन और सृजन की सृष्टि के कारणभूत तत्वों की लाक्षणिक पूजा होती है।[21] इसका प्रमुख उद्देश्य जीव–जगत को धन–धान्य से सम्पन्न और सुःखमय जीवन की कामना से है अर्थात् सम्पूर्ण जीव–जगत के कल्याण मात्र से है। इस त्यौहार में मुख्यतः वन के देवी–देवताओं की त्यौहार के अवसर पर पूजा–अर्चना के माध्यम से उन्हें प्रसन्न करने की परम्परा है क्योंकि चैत्र मास के आगमन पर जंगल में नई कोपलें एवं पत्तियां निकलती है, जिसमें विश होने की सम्भावना होती है। इस विश को खाने से पशुओं की मृत्यु हो जाती है। इसलिए पशुओं का बचाव व रक्षा हेतु यह त्योहार मनाया जाता है।[22]

विशू का यह पर्व सम्पूर्ण यमुना–टौंस घाटी क्षेत्र में पूरे उत्साह और हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है तथा इस अवसर पर क्षेत्र के अनेक स्थानों पर मेले भी आयोजित होते हैं। विशू उत्सव के अवसर पर जौनसार–बावर क्षेत्र में थाणाडांडा, नागथात, चुराणी, गिरतीथात, चौलीथात, लाखामण्ड़ल, मुयलाथात, सौचोई, मानड़थात, काण्ड़ोई भरम, माघटीडांडा, आदि स्थानों पर रँवाई क्षेत्र में भुटाणू, टिकोची, चींवा, किरोली, तथा जौनपुर क्षेत्र में त्याड़ा–भदराज आदि नामक स्थानों पर मेलों का आयोजन होता है।[23]

समाज में प्रचलित लोकमान्यता के आधार पर प्राचीन समय से गांव की युवतियाँ (ध्याणटुड़ियाँ) वैशाख माह की विषुवत संक्रान्ति के अवसर पर झूण्ड अथवा समूह बनाकर अपने पूर्ण श्रृंगार के साथ ऊँचे–ऊँचे पर्वतों पर 'गानी' के फूल तथा कोपलें बीनने के उद्देश्य से जंगलों में जाया करती थी। गानी एक सुगन्धित पुष्प का एक उपयोगी पौधा है। यह पौधा रोगों के उपचार हेतु लाभकारी माना जाता है। इसके कोपलों का स्वादिष्ट साग भी बनता है। यह पौधा बसन्त ऋतु के आगमन पर ऊँचे–ऊँचे पर्वतीय व देवदार–बांज के जंगलों में फलता–फूलता तथा बसन्त ऋतु के पश्चात् विलुप्त हो जाता है। गांव की लड़कियाँ पहले इन पौधों के कोपलें व फूलों को तोड़कर लाती थी। तत्पश्चात् सभी लड़कियाँ एक स्थान पर एकत्रित होती थी तथा उत्साह के साथ लोकगीतों के साथ तांदी लोकनृत्य करती थी। साथ ही जंगूबाज व बाजूबन्ध भी मनोरंजन की दृष्टि से गाये जाते थे।

धीरे–धीरे यह आयोजन एक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परम्पराओं के रूप में प्रचलित हो गया तथा उन ऊँचे–ऊँचे पर्वतीय टीलों पर लकडी से निर्मित शिवलिंग स्थापित किये गये और इन मेलों को जौनसार–बावर, रँवाई, जौनपुर आदि क्षेत्रों में विशू मेले के रूप में आयोजित होने लगे। यही कारण है कि विशू मेले को 'गनियात' भी कहा जाता है। इसके साथ यह उत्सव कौरवों–पाण्डवों के मध्य प्रचलित कला–कौशल से भी पारम्परिक रूप से जुड़ गया है।[24]

मेले स्थल का प्रबन्ध

विशू मेले का शुभारम्भ बैशाख माह की संक्रान्ति से एक त्यौहार के रूप में आयोजित होता है। इस अवसर पर क्षेत्र के विभिन्न देव स्थानों पर तीन से चार दिन तक निरन्तर एक दिवसीय मेले आयोजित होते हैं। सोचोई, मानड़थात, एवं घेतीडाण्डा आदि स्थानों पर एक दिवसीय मेले 13 अप्रैल, 16 अप्रैल तक प्रातः काल से सांय काल तक आयोजित होते हैं। यहां सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक रूप से सम्मान स्थिति वाले क्षेत्र के गांव व खत विशू मेले अलग–अलग स्थानों पर आयोजित करते हैं। मेले का आयोजन पूर्व नियोजित होता है। यह खत या पट्टी विशेष के सम्बन्धित गांव के लोगों पर निर्भर करता है। खत व गांव के मुखिया (स्याणे) सामूहिक रूप से मेले का प्रबन्ध करते हैं। मेले में छोटी–मोटी दुकाने लगी रहती हैं। रात्रि विश्राम की मेले स्थल पर कोई व्यवस्था नहीं होती। मेले के समापन पर लोग अपने–अपने घरों की ओर लौट जाते हैं। सोचोई, मानड़थात, एवं घेतीडाण्डा में आयोजित मेलों में शामिल मशक खत, मेघरेऊ खत एवं बमटाड़ खत के गांव के लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जो स्वयं ही आयोजन व प्रबन्ध करते हैं। इसी प्रकार समस्त गांव व खत के लोग स्वयं मेले स्थल की व्यवस्था सामूहिक रूप से करते हैं।[25]

विशू मेले के सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम

प्रत्येक वर्ष विशू मेले की तैयारी विषुवत संक्रान्ति से एक सप्ताह पहले आरम्भ हो जाती है। गांव–खत सभी लोग मेले से पहले अपने कृषि कार्यों को समाप्त कर अपने–अपने घर, आंगन व मकान की साफ–सफाई एवं लिपाई–पुताई करते हैं। विशू के इस शुभ अवसर पर खत के शामिल गांव के अलावा अतिथियों की भरमार होती है। अतिथियों का आदर व समान के साथ सत्कार किया जाता है। इस अवसर पर मेहमानों को दूर–दूर से आमन्त्रित किये जाते हैं। मेले में चावल को कूटकर व पीसकर इसकी शाकुडिया (पापड़) व धान को कुछ समय पहले बर्तन में भिगाकर औखली में कूटकर 'च्युड़ा'(मुड़ा) बनाया जाता है। इसके साथ परम्परागत खाद्य सामग्री जैसे– शाकाहारी व मांसाहारी भोजन परोसने की परम्परा है। पहले संक्रान्ति के दिन इष्ट देवता की पूजा की जाती है। त्यौहार मनाने के पश्चात सभी लोग मेहमानों सहित अपने परम्परागत् वेशभूषा व महिलायें विशेष कर आभूषण समेत सज धजकर मेले में जाते हैं। गांव–खत से सभी लोग अपनी–अपनी टोलियों (समूहों) में सामूहिक वाद्ययन्त्रों के साथ लोकगीत व लोकनृत्य के साथ मेले स्थल पर पहुँचते हैं।[26]

मेले स्थल पर आगमन की परम्परागत प्रक्रिया

बैशाख संक्राति (संगरांद) अथवा बुरासनी (फूल संक्रान्ति) पर्व के दूसरे तीसरे दिन परम्परागत रूप से विशू मेले जगह–जगह आयोजित होते हैं। मेले के दिन दोपहर में पुरूष–महिलायें,युवक–युवतियाँ सज धजकर सार्वजनिक आंगन में एकत्रित होकर देवी–देवताओं और ऐतिहासिक पुरूषों पर बनी हारूल तांदी नृत्य से आरम्भ करते हैं। विशू मेले में प्रत्येक पुरूष और युवक अपने अस्त्र–शस्त्रों के साथ मेले में शिरकत करते हैं। लोकनृत्य करते समय प्रमुख अस्त्र–शस्त्रों जैसे–डांगरा (फरसा), घेसड़ी, डेंगा (लाठी) आदि का नाचने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। नृत्य करते समय अस्त्र–शस्त्रों को हवा में लहराया जाता है।

मेले स्थल पर प्रस्थान की शुरूआत परम्परागत रूप से हजूरै–हजूरै नृत्य से होती है। इसके साथ–साथ बीच में 'शांठी–पांशी रे खेलटू' नृत्य भी होते रहता है। गांव से बाहर कुछ दूर पहुँचने पर 'झीरूवा–रै–झीरूवा' धुम्मसू नृत्य की परम्परा प्रचलित है। इन लोकनृत्यों का विशू मेले में न केवल मनोरंजन व आनन्द की दृष्टि से बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं उत्पादन व सृष्टि की रचना की दृष्टि से भी विशेष महत्व है। इसीलिए बारी–बारी से यह नृत्य विशू मेले में शामिल सभी गांव द्वारा मेले स्थल तक आते–आते दोहराये जाते हैं। मेले स्थल पर खत के समस्त गांव के पहुँचने पर सामूहिक रूप से पुनः यह नृत्य दोहराये जाते हैं। मेले स्थल पर धुम्मसू लोकनृत्य का यह दृश्य अद्भुत प्रतीत होता है। मेले स्थल पर सर्वप्रथम इष्ट देवता व खत के प्रमुख प्रतिनिधि (स्याणा) के स्वागत में शबद बजाया जाता है।[27]

मेले के अन्तर्गत आयोजित कार्यक्रम

हजूरै–हजूरै धुम्मसू नृत्य

हजूरै–हजूरै विशू मेले का पारम्परिक धुम्मसू लोकनृत्य है, जिसका अर्थ आइऐ श्रीमान आइऐ से है। अर्थात् विशू मेले में आमन्त्रित करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम यही नृत्य किया जाता है। पहले गांव के युवक आंगन में आकर गांव के सभी पुरूष–महिलाओं को इस नृत्य द्वारा गांव के मुख्य आंगन में आमंन्त्रित करते हैं। तत्पश्चात् खत के सभी गांव या मेले में शामिल गांव इस नृत्य के माध्यम से एक दूसरे को मुख्य मेले स्थल पर आमन्त्रित करते हैं। इसे स्थानीय भाषा में फुर्निया कहते हैं। फुर्निया धुम्मसू लोकनृत्य की रौद्र व कड़क थाप है। इस थाप के साथ नृत्य करते समय ऐसा लगता है कि कंकरीट–मिट्टी भी नाच रही है। हजूरै–हजूरै लोकनृत्य विशू मेले में सन्देश वाहक अथवा संचार का एक माध्यम है जो लोगों को मेले स्थल पर आमन्त्रित करने के उद्देश्य से किया जाता है। इस लोकनृत्य के आरम्भ होते ही लोगों तक यह सन्देश पहुँच जाता है और विशू मेले स्थल की ओर सभी लोग प्रस्थान करते हैं। इस लोकनृत्य का सन्देश पहुँचते ही सभी लोग अपने–अपने अस्त्र–शस्त्रों को लेकर मेले में शामिल होते हैं।[28]

झीरू धुम्मसू नृत्य

झीरूवा धूम्मसू नृत्य में झीरू एक व्यक्ति विशेष है। इस झीरू लोकनृत्य में काम–वर्जना, उर्वरता–उत्सव

का भाव निहित है। विशू मेले में उत्पादन और सृजन की सृष्टि के कारणभूत तत्वों की लाक्षणिक पूजा की दृष्टि से इस लोकनृत्य का महत्व है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके पीछे प्रजनन प्रक्रिया के लैंगिक पक्ष का हाथ रहा है अर्थात् इसे लिंग पूजा के रूप में देखा जा सकता है। विशू मेले में मेले स्थल पर लिंग–पूजा से भी यही निष्कर्ष निकलता है। यही कारण है कि सृष्टि निर्माण और पशु–धन एवं फसल उत्पादन में वृद्धि के उद्देश्य से 'झीरू लोकनृत्य' का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, एवं सृष्टि की रचना की दृष्टि से विशेष महत्व है। यह लोकनृत्य भी झीरू के नाम पर ढ़ोल–दमाऊ की रोद्र व कड़क थाप के साथ किया जाता है। इस नृत्य को स्थानीय भाषा में भाण्ड़ कहते हैं। भाण्ड़ से तात्पर्य काम–वर्जना से है। यही कारण है कि यह लोकनृत्य विशू मेले में सृष्टि की रचना व उत्पादन के संवर्द्धन हेतु परम्परागत रूप से किया जाता है।[29]

शांठी–पांशी धुम्मसू लोकनृत्य

शांठी–पांशी की अवधारणा और ठोउड़ा उत्सव से प्रेरित 'शांठी–पांशी रे खेलटू' लोकनृत्य का विशू मेले में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं युद्ध प्रशिक्षण की दृष्टि से विशेष महत्व है। यह मेले का हंसमुख अर्थात् हास्यास्पद से ओत–प्रोत लोकनृत्य है। इसमें नृत्य करते समय आदमी एक पैर या टांग से जमीन पर उछलता–कूदता है। यह नृत्य भी शांठी–पांशी की हास्यास्पद से युक्त थाप के साथ किया जाता है। साथ ही सभी लोग बार–बार 'शांठी–पांशी रे खेलटू' और 'उभी चिलकिया मेरिए जागै' बोलते व अस्त्र–श्स्त्र लहराते रहते हैं। उभी चिलकिया मेरिये' जागे से अभिप्राय जन्म स्थान या गांव की थाती–माटी से है अर्थात् गांव की थाती–माटी शक्ति के रूप में ठोउड़ा खेलते हुए चमत्कार करना ताकि मेरी विजयी हो। 'शांठी–पांशी' की अवधारणा कौरवों–पाण्डवों की विचारधारा और उनके दलों से प्रभावित है। हिमाचल प्रदेश और जौनसार–बावर में कौरवों और पाण्ड़वों के समर्थक लोगों को शांठी–पांशी कहा गया है। इस अवधारणा के आधार पर कौरवों की संख्या साठ और पाण्ड़वों की पाँच बतायी गयी है। कालान्तर में साठ से शांठी और पाँच से पांशी बना और इसी के आधार पर शांठी–पांशी की अवधारणा का विकास हुआ।[30]

हालांकि समाज में प्रचलित जनश्रुति पर आधारित लोकगाथाओं व लोकगीतों में कौरवों–पाण्डवों की संख्या महाभारत से सम्बन्धित प्रमुख ग्रन्थों के अनुसार किया जाता है! इसीलिए शांठी–पांशी की अवधारणा में उल्लिखित कौरवों–पाण्डवों की संख्या पर संन्देह होना स्वभाविक है। शांठी–पांशी से तात्पर्य कौरवों–पांडवों के मध्य राजसत्ता ग्रहण करने व एक–दूसरे को राजसत्ता से बेदखल करने के उद्देश्य से उनके मध्य निरन्तर होने वाले षड्यंत्र, परस्पर संघर्ष, मतभेद एवं द्वन्दयुद्ध से है। साथ ही इस संघर्ष में होने वाली जान–माल की हानि से व कुलवंश अथवा परिवार के समूलनाश से है न कि उनके संख्यात्मक आँकड़ों से है।

इस प्रकार उपर्युक्त धुम्मसू लोकनृत्य का यह कार्यक्रम बारी–बारी से मुख्य मेले स्थल पर पहुँचने तक जारी रहता है। मेले स्थल पर सर्वप्रथम लोग भगवान शिव (शिलगुरू) के दर्शन करते हैं। तत्पश्चात् जुबड़ (मैदान) में सभी दल या गांव अपने–अपने स्थान पर एकत्र होते हैं। सभी गांव के पहुँचने पर पहले आराध्य देवता चार महासू के नाम तथा गांव–खत के मुखिया के सम्मान में शबद (स्वागत शबद) बजाकर एक बार सभी दल सामूहिक रूप से धुम्मसू लोकनृत्य करते हैं। तत्पश्चात् ठोउड़ा उत्सव आरम्भ होता है।

ठोउड़ा उत्सव का परम्परागत शुभारम्भ

ठोउड़ा शब्द का सम्बन्ध पूर्व वैदिक संस्कृत शब्द धातु के 'ठोर' से लगता है, जिसका अर्थ दौड़ना है। पहाड़ी भाषा में ठोर का अर्थ दौड़ाई है, यथा 'ठोर मारना' (दौड़ाई देना) ठोर से 'ठुरना' बना है जिसे पंजाबी में 'टूरना' कहा जाता है। 'टूरना' भाववाचक शब्द 'ठूरड़ा' या 'ठुर्ड़ा' से बना है जिसका अर्थ पैर या टांग है। पहाड़ी में 'र' प्रायः श्रुत हो जाता है। इस प्रक्रिया में अनेक बोलियों में 'ठुरड़ा' या 'ठुर्ड़ा' केवल 'ठुड़ा' रह गया है और पंजाबी में यह ठुड़ हो जाता है। इसी ठुड़ को ठुड़ा कहा जाता है जिसका परिवर्तित रूप लोक–नाटय ठोउड़ा कहलाया है, क्योंकि इसमें टांगों पर ही बाणों का निशाना बांधा जाता है और टांगों की मूल कसरत रहती है।[31]

विशू मेले स्थल पर धनुष–बाण द्वारा खेला जाने वाला 'ठोउड़ा' नृत्य रोमांचकारी होता है। यमुना–टौंस घाटी के मध्य जौनसार–बावर व समीपवर्ती स्थानों पर मनाया जाने वाला यह पर्व निराला है। इस मेले में धनुष–बाण से खेला जाने वाला यह ठोउड़ा युद्ध–नृत्य आकर्षण का मुख्य केन्द्र बिन्दु होता है। ठोउड़ा उत्सव में भाग लेने के लिए दूर–दूर से महान प्रतियोगी तथा इस खेल में पारंगत व निपुण कुशल योद्धा अपने साजो–समान के साथ उत्सव स्थल पर जोश व उत्साह के साथ पहुँचता है। विद्वानों तथा लेखकों ने भी ठोउड़ा उत्सव में शामिल पूर्व कुशल योद्धाओं व ठोउड़ा सम्बन्धी प्रमुख अस्त्र–शस्त्रों एवं पोशाक का उल्लेख किया है। मेले के दिन प्रातः काल देवी–देवताओं की पूजा के उपरान्त ठोउड़ा खेलने वाले कुशल योद्धा व वीर पुरूष मन्दिर के भण्ड़ार गृह से धनुष–बाण एवं ऊनी–कुर्ता व पायजामा निकालते हैं। इन वस्त्रों को धारण कर ठोउड़ा खेलते हैं किन्तु सोचोई, मानड़थात, घेतीडाण्डा आदि मेला स्थलों पर इन वस्त्रों के धारण करने वाले धनुर्धारी की खासी कमी देखने को मिली है। यह नृत्य हारूल (वीरगाथाओं) के साथ वाद्ययन्त्रों की ताल पर खेला जाता है।[32] अस्त्र–शस्त्रों में धनुष–बाण (धनु–शरू) एवं डांगरा (फरसा) प्रमुख है। पोशाक में सूथण और औला (चमड़े का जूता) है। सूथण ऊन का बना चूड़ीदार पायजामा है। जबकि औला चमड़े का बना मोटा जूता है। ठोउड़ा खेलते समय इन अस्त्र–शस्त्रों से बचने के लिए उक्त पोशाक का होना आवश्यक है। इसके अभाव में ठोउड़ा खेलना वर्जित है क्योंकि इसके अभाव में शारीरिक चोट लग सकती है, जो प्राणघातक भी हो सकती है।[33]

ठोउड़ा से अभिप्राय यह है कि ठोउड़ा को सामान्यतः तीर अथवा बाण को स्थानीय भाषा–बोली में शरू या शरी कहते हैं। जब कमान में तीर अथवा बाण को जोड़ीदार पर प्रहार हेतु साधा जाता है, और पिण्डली पर निशाना लगाते हैं, तो उसे ठोउड़ा कहते हैं। लोक

मान्यतायें है कि ठोउड़ा प्राचीन काल में युद्ध प्रशिक्षण का एक रूप माना जाता है। यह भी मान्यतायें है कि यह मेला वीर राजपूतों का था, जो अपने अस्त्र– शस्त्र– तीर–कमान और फरसा लेकर अपनी बहादुरी का राग अलापते हुए युद्ध स्थल पर कूच करते थे।[34] कालान्तर में युद्ध स्थल का स्थान मेले स्थल ने ले लिया जो लोगों के बीच भाई–चारे का प्रतीक एवं संस्कृति के आदान–प्रदान का माध्यम बन गया। यही कारण है कि आज भी ठोउड़ा उत्सव सम्बन्धी नियम–कानूनों का अनुशासन के साथ पालन किया जाता है।[35]

ठोउड़ा उत्सव सम्बन्धी नियम–कानूनों का विशेष महत्व है सर्वप्रथम ठोउड़ा वर्ण–व्यवस्था अथवा जाति व्यवस्था के आधार पर खेला जाता है। ये अपने भाई–बन्धु के साथ भी नहीं खेला जाता है। उल्लेख है कि ठोउड़ा प्रतियोगिता में दोनों प्रतिद्वन्दी एक ही परिवार व खानदान के लोगों के बीच खेला जाता है जो लोक मान्यताओं और उल्लिखित तथ्यों के आधार पर सत्य नहीं है।[36] ठोउड़ा ब्राह्मण–राजपूत जातीय श्रेष्ठता तथा समाज में उच्च स्थान व प्रतिष्ठा प्राप्त होने के कारण दलितों के साथ नहीं खेला जाता है। हिन्दू शास्त्रों एवं परम्पराओं के अनुसार क्षत्रिय ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करता है। यही कारण है कि ब्राह्मणों और राजपूतों के बीच ठोउड़ा नहीं खेला जाता है। ठोउड़ा एक–दूसरे गांव, खतों एवं शांठी–पांशी लोगों के बीच सामान्यतः खेला जाता है।[37] शांठी–पांशी से तात्पर्य कौरवों और पाण्ड़वों के समर्थक लोगों से है। ठोउड़ा (तीर) लगाने के भी स्पष्ट नियम होते हैं। यह केवल घुटने से नीचे और टकने से ऊपर टांग पर लगाने का नियम होता है अर्थात् पिण्डली मुख्यतः इसका केन्द्र अथवा लक्ष्य होता है।[38]

ठोउड़ा उत्सव में वाद्य–यन्त्रों का विशेष महत्व होता है। ठोउड़ा उत्सव की विशेष धुन या ताल को स्थानीय भाषा बोली में 'ठोइड़ाच' या ठड़ेयर ताल कहते हैं। इस ताल का ठोउड़ा खेलते समय प्रतियोगी (ठोटोरी) पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ठोउड़ा उत्सव में महारत हासिल योद्धा प्रतिभाग लेता है, जो ठोउड़ा खेल में पारंगत और निपुण होता है। ठोउड़ा उत्सव में कुशल और अनुभवी प्रतियोगी के साथ नौसिखिया भी स्वंय को जोश और आवेग में आकर नहीं रोक पाते हैं। इसमें मेहमान खत और मेजवान खतों के गांव के प्रतियोगी (ठोठोरी) भाग लेते हैं। मेजवान खत के गांव एक दूसरे से पहले मैदान में कूद पड़ने को उत्साहित रहते हैं। तथा 'शांठी–पांशी रे खेलटू' हास्यपूर्ण नृत्य के साथ मैदान में ललकार भरते हुये कूद पड़ते हैं। प्रतियोगी मैदान में एक दूसरे को मुकाबले के लिये आमन्त्रित करते हैं। जब 'शांठी–पांशी' अथवा खस राजपूतों के मध्य मुकाबला होता है,तो एक दूसरे पर ठोउड़ा (तीर) के प्रहार के साथ–साथ व्यंग्यों और वक्तव्यों का भी मनोवैज्ञानिक प्रहार करते हैं। इस स्थिति में सुअवसर मिलने पर एक प्रतियोगी स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरे को निकृष्ट दिखाने का जोर–शोर के साथ अथक प्रयास करते हैं।[39]

ठोउड़ा उत्सव वस्तुतः पहाड़ी जन जीवन की शताब्दियों पुरानी संस्कृति और सभ्यता का ताना–बाना है। यह लोक जीवन में वीरत्व के रूप में प्रतिष्ठित है। इसमें प्राचीन युद्ध विधा और व्यूह–रचना का जीता–जागता उदाहरण परिलक्षित होता है। साथ ही यह पहाड़ी जनमानस के लिए तीरअन्दाजी का उपयुक्त प्रशिक्षण प्रदान करता है। आधुनिकता से पूर्व धनुष–बाण की लड़ाई और हिंसक पशुओं से रक्षा का यह एक मात्र साधन था। कालान्तर में ठोउड़ा उत्सव का सम्बन्ध केवल टांगों या पैरों पर निशाने बाजी का एक मात्र मनोरंजन के साधन के रूप में रह गया है।[40]

विद्वानों के अनुसार धनुष–बाण की यह प्रचलित परम्परा महाभारत के युद्ध का एक प्रतीकात्मक रूप है। यह खेल जौनसार–बावर, रँवाई, जौनपुर, तथा हिमाचल प्रदेश के सोलन, शिमला व सिरमौर जनपदों के दूरस्थ गांवों में भी खेला जाता है। इन क्षेत्रों में दो पृथक–पृथक परिवारों के वंशजों को महाभारत काल से जोड़ा जाता है। जिन्हें 'पाशा' (पाण्डवों के वंशज) एवं 'शाठा' (कौरवों के वंशज) कहते हैं। परन्तु इस क्षेत्र के लोग कौरवों और पाण्ड़वों के वंशज नहीं है। ये लोग केवल इनकी अलग–अलग विचारधारा के समर्थक थे न कि उनके वंशज थे। मान्यता है कि ये योद्धा परिवार जौनसार–बावर, सिरमौर, शिमला व बंगाण आदि क्षेत्रों में आकर बस गये। कालान्तर में वे लोग शांठी–पाांशी के रूप मे विख्यात हुए। वर्तमान में इस युद्ध खेल को जीवित रखते हुए इसे नृत्य शैली में संरक्षित रखा गया है। आज भी यहां लोक परम्पराओं के आधार पर सुदूरवर्ती क्षेत्रों में यह धनुष–बाण का युद्ध–नृत्य जारी है।[41]

महाभारत की जनश्रुति पर आधारित लोकगाथाओं के अनुसार मान्यता है कि कालसी और चकराता के मध्य मसूरी मोटर मार्ग पर गढ़ बैराट नामक क्षेत्र में 'विस्सूबड़ियाड़िया' नाम का एक राक्षस रहता था। इसके आतंक से गढ़–बैराट क्षेत्र भयभीत था। राक्षस तीर–कमान से सम्पन्न और अत्यन्त बलशाली था। अज्ञातवास के दौरान कुन्ती पुत्र पाँच–पाण्ड़वों गढ़–वैराट के रास्ते से आ रहे थे। भीम की अनुपस्थिति में राक्षस ने कुन्ती और पाण्ड़वों को बन्दी बना लिया और बन्दी देखकर भीम आश्चर्य चकित हो उठा फलस्वरूप भीम और राक्षस के मध्य घोर युद्ध हुआ। युद्ध में राक्षस पराजित हुआ और मृत्यु से पहले भीम से एक वरदान मांगा कि मेरे तीर–कमान और नाम से पहाड़ी क्षेत्र में प्रतिवर्ष विशू मेले में ठोउड़ा खेलना होगा, ऐसा न करने पर श्राप देने की चुनौती दी। भीम इस वरदान को स्वीकार करने के लिए विवश हुआ। यही कारण माना जाता है कि जौनसार–बावर रंवाई–जौनपुर तथा आस–पास के मुल्कों में प्रतिवर्ष वैशाखी के अवसर पर आयोजित विशू मेले में ठोउड़ा उत्सव मनाने की परम्परा प्रचलित है तथा इस अवसर पर प्रत्येक वर्ष ठोउड़ा उत्सव कार्यक्रम पूरे उत्साह के साथ खेला व मनााया जाता है। यही ठोउड़ा उत्सव मनाने के अन्य कारणों में से एक माना जाता है।[42]

पारम्परिक तान्दी नृत्यों का परिदृश्य

विशू मेले स्थल पर जिधर देखो रौनक ही रौनक का माहौल नजर आता है। एक तरफ ठोउड़ा उत्सव मेले का मुख्य आकर्षण है, तो बच्चों का कौतुहल सातवें आसमान पर होता हैं वहीं दिन भर दूसरी ओर महिलायें (रणटुड़ी) व लड़कियाँ (ध्याणटुड़ी) पारम्परिक लोक गीतों

का समा बांधती है।[43] मेले में युवक–युवतियाँ एवं पुरूष–महिलायें दोनों वर्ग पृथक–पृथक समूहों में विभाजित होकर सामूहिक लोकगीत व लोकनृत्यों का आयोजन करते हैं। इन लोकगीतों में मुख्यतः झुमैलौ, तांदी, बाजूबन्द, हारूल और इनके ताल के साथ–साथ नृत्य के पदचापों का अनुठा समायोजन देखने को मिलता है। इन गीतों में प्रत्येक कार्य, दुर्घटना, विषाद, हर्ष, व्यापार, विछोह, मिलन आदि की सहज अभिव्यक्ति होती है। इस मेले में विभागीय स्टॉल, खेलकूद प्रतियोगितायें एवं लोकगीत व नृत्य की सांस्कृतिक प्रतियोगितायें आदि गतिविधियां आयोजित नहीं की जाती हैं। स्थानीय लोगों द्वारा ही लोकगीत व लोकनृत्य अपनी परम्परा के अनुसार प्रस्तुत किये जाते हैं। प्रतियोगिता के रूप में धनुष–बाण का खेल (ठोउड़ा) खेला जाता है।[44] ठोउडा उत्सव समाप्त होने पर मुख्य मेले स्थल पर महिलायें पारम्परिक झैंता और रासो तान्दी नृत्य करती हैं। इन महिला तान्दी नृत्य का अपना सांस्कृतिक महत्व है, जो निम्नलिखित हैं। –

परम्परागत रासो व झैंता नृत्य

रासो पारम्परिक तांदी नृत्य है यह तान्दी नृत्य केवल ढोल दमाऊ की थाप पर तान्दी बनाकर महिलायें हाथों की कलाइयों से करती हैं। इस नृत्य में हाथों की कलाकारी और आँखों के ताल–मेल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस नृत्य में महिलायें अपने कला–कौशल को दिखाने के लिए पीछे नहीं रहती। विशू मेले में महिलाओं के इस सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य करते वक्त ऐसा प्रतीत होता है कि मानों मेले स्थल पर केवल महिलाऐं परियों के रूप में नृत्य कर रही हैं। महिलायें तान्दी बनाकर दोनों हाथों से व कमर झुकाकर यह नृत्य करती हैं तथा इसकी ताल ढोल–दमाऊ से दी जाती है। धीमी गति का यह नृत्य बहुत समय में तान्दी का एक चक्कर पूरा कर पाता है। मेला स्थल इस तान्दी नृत्य के आकर्षक और मनमोहक दृश्य से मन्त्र–मुग्ध हो उठता है। साथ ही चारों तरफ की चहल–पहल एवं शोर–शराबा शान्त प्रतीत होता है। झैंता नृत्य जौनसार–बावर का एक प्रसिद्ध व आकर्षक नृत्य है। यह नृत्य लगभग सभी मेलों में किया जाता है परन्तु विशू मेले में इसका विशेष महत्व है। इसमें महिलायें पारम्परिक परिधानों से सुसज्जित होकर तान्दी नृत्य में शामिल होती हैं। महिलायें बायें हाथ से तान्दी को जोड़ती हैं और दायें हाथ से कमर झुकाकर नृत्य करती हैं। यह नृत्य ढोल–दमाऊ व पारम्परिक लोकगीत के साथ किया जाता है।[45]

परम्परागत घुंडिया रासो नृत्य

विशू मेले का समापन परम्परागत रूप से 'घुण्डिया रासो' तान्दी नृत्य द्वारा किया जाता है। इसमें केवल पुरूष ही पुरूष पारम्परिक सफेद पोशाक पहनकर भाग लेते हैं। इस पोशाक को स्थानीय भाषा–बोली में 'जुड़ो' या 'चोड़ना' कहते हैं। पोशाक के साथ कमर में लाल, पीले एवं हरे रंग की चादर गले में मफलर की भाँति लपेटी जाती है। इस नृत्य में सभी लोग नाचने के लिये ढ़ाल, तलवार और फरसा आदि अस्त्र–शस्त्रों का उपयोग करते हैं। यह नृत्य ढोल–दमाऊ की विशेष ताल 'घीं' के साथ किया जाता है। स्थानीय भाषा में इस ताल को 'घीं' कहा जाता है। यह नृत्य अर्द्धवृत्ताकार तान्दी बनाकर किया जाता है। नृत्य करते समय सभी लोग एक स्थान पर रूककर बायें पैर के घुटने पर दायें पैर के टखने को रखकर आसमान में अस्त्र–शस्त्र लहराते हैं। यह क्रम बारी–बारी से चलता रहता है। इसका प्रतिनिधित्व गांव या खत के स्याणा (मुखिया) द्वारा किया जाता है। केवल खत के स्याणा के पास एक हाथ में ढ़ाल और दूसरे हाथ में तलवार होती है जबकि अन्य लोगों के पास केवल तलवार या फरसा में से एक ही शस्त्र होता है। इस नृत्य का अपना सामाजिक, सांस्कृतिक महत्व है साथ ही इसका व्यक्ति विशेष के जीवन–मरण से गहरा सम्बन्ध है। किसी व्यक्ति (पुरूष) की मृत्यु होने पर उसे यह सफेद पोशाक पहनाकर इस तान्दी नृत्य की मुख्य 'घीं' ताल के साथ उसका मृत शरीर गांव से विदा किया जाता है। इसीलिये इस पोशाक और 'घीं' ताल का जीवन–मरण से निकट का सम्बन्ध है। नब्बे के दशक से इस परम्परा अथवा प्रथा का प्रभाव समाज में कम होने लगा। कालान्तर में यह प्रथा समाप्त हो गयी।[46]

विशू मेले का आर्थिक विश्लेषण

विशू मेले का यह पर्व सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ–साथ आर्थिक दृष्टि से भी अपना विशेष महत्व रखता है। मेले के इस अवसर पर जौनसार–बावर व समीपवर्ती क्षेत्र के लोग कृषि कार्य समाप्त करने के पश्चात् मनोरंजन, परस्पर मिलन व आराम करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर मेले का आयोजन कर भरपूर आनन्द लेते हैं। प्राचीन समय से विशू मेले से पूर्व आवश्यक सामग्री का क्रय–विक्रय वस्तु–विनिमय प्रणाली के आधार पर होता था। परन्तु आधुनिकता के प्रभाव के कारण विशू मेले में हस्तशिल्प व स्वयं निर्मित वस्तुओं का प्रदर्शन एवं व्यापार होने लगा जबकि पहले मेले के दिन व्यापार के प्रदर्शन पर सामाजिक विधि–विधान व आर्थिक जुर्माने के साथ प्रतिबन्ध था। माना जाता है कि व्यवसाय व व्यापार से मेले का महत्व कम होता रहा साथ ही मेले स्थल पर लोगों का ध्यान सांस्कृतिक कार्यक्रम से हटकर दुकान व खाद्य सामग्री की तरफ आकर्षित होने लगा। इस अवसर पर लोग देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना के साथ–साथ नयी फसल से बनाये गये खाद्य व्यजंन भेंट स्वरूप मन्दिर में चढ़ाये जाते हैं।

विशू मेले में आधुनिक समय के साथ स्थानीय व समीपवर्ती बाजार या कस्बों के व्यापारियों द्वारा मेले स्थल पर चाय, पकौड़ी, बीड़ी, तम्बाकू, मिठाइयाँ कुल्फी, छोले–बटूरे, समोसे, फलों का जूस, गिल्टा, व खेती के उपकरण आदि की दुकाने लगती है। इन दुकानों से व्यवसायी मेले के अवसर पर एक ही दिन में हजारों रूपये तक कमा लेते हैं। हालांकि विशू मेले के अधिकार क्षेत्र के गांव–खत के लोग उनसे कर वसूल करते हैं। साहिया, चकराता, कालसी व विकासनगर से व्यापारी वर्ग मेले स्थल पर दुकानों को लाकर सजाते हैं। समस्त गांव व खतों के विभिन्न लोग जन समूह के साथ मेले स्थल पर पहुँचते हैं। किन्तु दूरस्थ गांव व नगरीय क्षेत्रों से रूट के परिवहन व अपने निजी वाहनों द्वारा मेले में पहुँचते हैं जिससे वाहन मालिकों को भी रोजगार के स्रोत उपलब्ध

हो जाते हैं। इस मेले में बहुत अधिक संख्या में वाहन मालिक रोजगार के कारण भाग लेते हैं।[47]

विशू मेले का स्वरूप

विशू मेले के स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों और लेखकों ने अलग–अलग ढंग से उल्लेख किया है। डी0 डी0 शर्मा का मत है कि हिमाचल प्रदेश के जूब्बल गांव और जौनसार–बावर में विशू मेला दो खतों अथवा खस राजपूतों (खुन्दों) के मध्य आयोजित होता है।[48] सिरमौर जिले में रैंजटे[49] के विशू मेले का ऐसा ही वर्णन एम0 आर0 ठाकुर द्वारा किया जाता है। खून्द (खस राजपूतों) का सम्बन्ध केवल देशमौण से है। विशू मेले के सम्बन्ध में खून्द शब्द का उल्लेख करना सही नहीं है। जैसा कि देश शब्द से स्पष्ट होता है कि इसके अन्तर्गत एक विस्तृत क्षेत्र आता है। जिसमें बहुसंख्य खून्द अर्थात् शांठी–पांशी मुल्क के खून्द (खस राजपूत) भाग लेते हैं। जबकि विशू मेला केवल कुछ गांव या एक–दो खतों तक सीमित होता है। परन्तु भोपाल सिंह द्वारा उल्लिखित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि विशू मेला न केवल दो खतों के मध्य आयोजित होता है बल्कि एक–दो गांव के द्वारा भी विशू मेला आयोजित होता है। विशू मेला वस्तुतः 3 से 4 दिन तक आयोजित होता है।[50]

लोक मान्यताओं और परम्पराओं के आधार पर भी शर्मा और ठाकुर द्वारा किया गया वर्णन सन्देह पूर्ण लगता है। मान्यता है कि विशू मेले का स्वरूप गांव–खत की भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं के साथ–साथ आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। मेले का स्वरूप जितना बड़ा होगा उसका महत्व भी उतना ही आधिक होगा। मेले के स्वरूप से तात्पर्य इसमें शामिल गांव–खतों से है अर्थात् इसमें एक गांव, खत के कुछ गांव, और एक या एक से अधिक खतों का प्रतिनिधित्व हो सकता है। अधिकांश मेलों का स्वरूप एक खत की भौगोलिक सीमा तक सीमित रहता है, क्योंकि उस गांव की सामाजिक, सांस्कृतिक परम्परायें और रीति–रिवाज एवं आर्थिक स्थिति समान होती है। हालांकि विशू मेले में निकट के गांव खतों के लोग भी मनोरंजन हेतु शामिल होते हैं। कभी–कभी चालदा महाराज के भ्रमण क्षेत्र में कई खतों का जमावड़ा होता है। ऐसी स्थिति में विशू मेले का स्वरूप व्यापक हो जाता है।[51]

परिवर्तनशील तत्वों की प्रवृत्तियाँ

प्राचीन काल से मेले लोक संस्कृति के वाहक और परस्पर मिलन के मुख्य केन्द्र रहे हैं। वह काल जब परिवहन व संचार के आधुनिक साधनों का अभाव था अर्थात् इनका विकास नहीं हुआ था। लोग इन मेलों के माध्यम से अपनी संस्कृति का आदान–प्रदान, अपने इष्ट मित्रों से मिलते थे, और एक–दूसरे के साथ सुख–दुःख बांटते थे। उस समय मेले में गांव–खतों की अच्छी भागीदारी रहती थी। लोगों को इन मेलों का बेसब्री से इन्तजार लम्बे समय से होता है। आधुनिकता के दौर में बढ़ते पलायन तथा पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव व प्रवेश के साथ मेले की मौलिकता का स्वरूप व प्रकृति का रूप कृत्रिमता ने ले लिया है। परिणामस्वरूप लोगों का इन मेलों के प्रति लगाव, रूचि व आकर्षण कम होने लगा है। इसमें आम लोगों की सहभागिता व भूमिका अब धीरे–धीरे कम होती जा रही है। युवा पीढ़ी में अपनी परम्परागत वेशभूषा व चाल–चलन का प्रचलन भी बदल रहा है। अब बहुत कम लोगों द्वारा ही अपनी परम्परागत वेशभूषा व खान–पान का प्रचलन समाज में देखने को मिलता है।

लोकगीतों व लोकनृत्यों में अश्लीलता का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। मेले में वीरगाथाओं (हारूल) के साथ खेला जाने वाला रोमांचकारी खेल 'ठोउड़ा' का प्रचलन भी धीरे–धीरे कम हो गया है क्योंकि इस खेल में कुशल धनुर्धर अब गांव–खत में बहुत कम रह गये हैं। यह खेल जौनसार–बावर, रँवाई व जौनपुर आदि क्षेत्रों के कुछ–कुछ गांव तक सीमित रह गया है। इन मेलों में प्रस्तुत होने वाले स्थानीय लोकनृत्यों में धुम्मसू, झैंता, रासौ, तांदी व ठोउड़ा नाट्य–कला मुख्य है। किन्तु आधुनिक पॉप संगीत एवं फिल्मी गीतों के नकारात्मक प्रभाव से ये सब अपना अस्तित्व निरन्तर खोते जा रहे हैं। मेले में ग्रामीणों द्वारा तैयार की गयी परम्परागत वस्तुओं व सरकारी तथा गैर–सरकारी प्रदशर्नियों का भी अभाव रहता है।

उत्तरांचल राज्य बनने के पश्चात् इन मेलों में विधायकों एवं मन्त्रियों का हस्तक्षेप दिखाई दे रहा है। विभिन्न स्थानों पर लगने वाले विशू मेले के उद्घाटन में मंत्रियों को आमंत्रित किया जाना आवश्यक समझा जाता है। परन्तु यहां की लोक संस्कृति को संरक्षित रखने एवं मेलों को बहुआयामी रूप देने का कोई प्रयास सरकारी व गैर–सरकारी स्तर पर नहीं किया जा रहा है।[52]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि विशू मेले का समाज में अपना सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विशेष महत्व है। विशू मेला, मेलों का मेला और लोक संस्कृति के वाहक का एक सशक्त माध्यम है तथा लोक संस्कृति के परिष्करण का दर्पण है। यह मेला पारम्परिक लोक संस्कृति का सजीव और जीवन्त स्वरूप है। विशू मेले की समस्त गतिविधियों मे शामिल कार्यक्रम में समाज के सम्पूर्ण रीति–रिवाजों, परम्पराओं व विधि–विधान का स्वरूप व प्रकृति का स्पष्ट चित्र परिलक्षित होता है। इस मेले से परस्पर सामाजिक जागरूकता और संस्कृति का आदान–प्रदान होता है। साथ ही इसमें लोक आस्था व विश्वास की भावना सतत् रूप से वर्द्धित होती है। मेले का स्वरूप गांव, खतों के समान रीति–रिवाजों व परम्पराओं पर निर्भर होता है। परन्तु इसकी प्रकृति त्यौहारों व मेलों पर आधारित है। आधुनिकता के प्रभाव के कारण विशू मेले के स्वरूप व प्रकृति तथा महत्त्व में परिवर्तन होने लगे और मेले के आयोजन और मनाने के तौर–तरीके में परिवर्तन होने लगे, परन्तु विकृति से दूर रहने के लिये समाज में वरिष्ठ व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रयास जारी है। नब्बे के दशक तक सम्पूर्ण क्षेत्र में विशू मेले का स्वरूप अधिकांशतः पूर्ववत बना रहा परन्तु तकनीकी विकास और रोजगार के उद्देश्य से ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन के कारण विशू मेला अपना स्वरूप और महत्त्व निरन्तर खोने लगा। यही कारण है कि वर्तमान में विशू मेला केवल गांव तक सीमित रह गया और वह भी केवल वैशाख संक्रान्ति तक सीमित है। इसीलिए आज विशू मेले की प्रासांगिकता, सार्थकता एवं लोकप्रियता कम होने लगी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एटकिन्सन, एडविन्न टी0, 1998, हिमालयन गजेटियर, उत्तरायण प्रकाशन हिमालय संचेतना आदिबदरी, चमोली, पृष्ठ 320–321
2. जोशी, के0 आर0, 1975, जौनसार बावर का संक्षिप्त परिचय, सोसायटी फॉर मोटिवेशनल ट्रेनिंग एण्ड एक्शन (समता),चकराता, देहरादून, पृष्ठ 1
3. नैथाणी, शिव प्रसाद, 2010, उत्तराखण्ड गाथाओं का रहस्य, पवेत्री प्रकाशन, श्रीनगर गढ़वाल, पृष्ठ 293
4. जोशी, के0 आर0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 1
5. रावत, प्रहलाद सिंह, 1985–86, गढ़–सुधा, चमोली पर्वतीय विकास परिषद्, चण्डीगढ़, पृष्ठ 24
6. कश्यप, पदम चन्द्र, 2003, भारतीय संस्कृति और हिमाचल प्रदेश, एस0 एन0 प्रिंटर्स नवीन शाहदरा, नई दिल्ली, पृष्ठ 1
7. एटकिनसन, पूर्वोक्त, पृष्ठ 113
8. शर्मा0, डी0 डी0, 2006, हिमालय के खश, पहाड़ प्रकाशन, नैनीताल, पृष्ठ 19
9. कुँवर, कमलेश, 2012, यमुना बेसिन (गढ़वाल हिमालय) का सांस्कृतिक भूगोल, रिसर्च इण्डिया प्रेस संगम विहार, नई दिल्ली पृष्ठ 5, 6
10. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त, पृष्ठ 6–8
11. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त, पृष्ठ 300
12. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त, पृष्ठ 214
13. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त, पृष्ठ 226
14. राणा, जयपाल सिंह 2008, जौनसार–बावर का परिचय, प्रियंका प्रकाशन बसन्त विहार, देहरादून पृष्ठ 134
15. शर्मा, डी0 डी0, 2013, उत्तराखण्ड़ का ज्ञान कोष, अंकित प्रकाशन, नैनीताल, पृष्ठ 662
16. शर्मा, डी0 डी0, 2007, उत्तराखण्ड के लोकोत्सव एवं पर्वोत्सव, प्रकाशन पीली कोठी हल्द्वानी, नैनीताल, पृष्ठ 138
17. राणा, जयपाल सिंह,पूर्वोक्त पृष्ठ 40, 47
18. शर्मा, डी0 डी0, 2006, पूर्वोक्त, पृष्ठ 130
19. ठाकुर, एम0आर0, 1981, हिमाचल के लोकनाट्य और लोकानुरंजन, गौतम आर्ट प्रेस शाहदरा, दिल्ली, पृष्ठ 54, 55
20. सिंह, भोपाल, 2009, जौनसार–बावर के सुपुत्र, जे0 वी0 पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ 90
21. कश्यप, पदमचन्द्र, पूर्वोक्त पृष्ठ 64–65
22. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त 2001, पृष्ठ 213
23. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त पृष्ठ 300
24. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त, पृष्ठ 301
25. कुवँर, कमलेश, पूर्वोक्त, पृष्ठ 301
26. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त, पृष्ठ 302
27. ठाकुर, एम0 आर0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 54, 55
28. 19 मई, 2016 को ग्राम बुल्हाड़ के विशू का सर्वेक्षण
29. कश्यप, पदमचन्द्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ 64, 65
30. सर्वेक्षण, पूर्वोक्त
31. रावत, सुभाष, 2001, मेले और उत्सव परम्परा, पौड़ी गढ़वाल, विनसर पब्लिशिंग कम्पनी,पृष्ठ 153
32. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त, पृष्ठ 303
33. सिंह, भोपाल, पूर्वोक्त पृष्ठ 91
34. रावत, सुभाष, पूर्वोक्त, पृष्ठ 92
35. सिंह, भोपाल, पूर्वोक्त, पृष्ठ 92
36. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त, पृष्ठ 303
37. सिंह, भोपाल, पूर्वोक्त, पृष्ठ 91
38. ठाकुर, एम0 आर0, पूर्वोक्त, पृष्ठ58
39. ठाकुर, एम0 आर0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 58
40. ठाकुर, एम0 आर0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 58
41. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त पृष्ठ 303, 304
42. महाभारत की लोकगाथाओं के प्रमुख विद्वानों के साक्षात्कार
43. रावत, सुभाष, पूर्वोक्त, पृष्ठ 152
44. कुँवर, कमलेश, पर्वोक्त पृष्ठ 302, 303
45. मनमौजी, सुरेश, आपणा रिवाज, देहरादून, घोसी गली देहरादून, पृष्ठ 25, 26
46. मनमौजी, सुरेश, पूर्वोक्त पृष्ठ 25–26
47. कुँवर, कमलेश, पूर्वोक्त, पृष्ठ 304
48. शर्मा, डी0डी0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 134, 137
49. ठाकुर, एम0आर0, पूर्वोक्त, पृष्ठ 58
50. सिंह, भोपाल पूर्वोक्त, पृष्ठ 53
51. 19 मई, 2016, ग्राम बुल्हाड के विशू मेले का सर्वेक्षण
52. कुँवर, कमलेश, पृष्ठ 305, 306